॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# अथ सप्तदशोऽध्यायः
## ( सत्रहवाँ अध्याय )

*अर्जुन उवाच*

**ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।**
**तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः॥ १॥**

*अर्जुन बोले—*

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **कृष्ण** | =हे कृष्ण! | **यजन्ते** | =(देवता आदिका) पूजन करते हैं, | **का** | =कौन-सी है? |
| **ये** | =जो मनुष्य | **तेषाम्** | =उनकी | **सत्त्वम्** | =सात्त्विकी है |
| **शास्त्रविधिम्** | =शास्त्रविधिका | **निष्ठा** | =निष्ठा | **आहो** | =अथवा |
| **उत्सृज्य** | =त्याग करके | **तु** | =फिर | **रजः, तमः** | = राजसी-तामसी? |
| **श्रद्धया, अन्विताः** | = श्रद्धापूर्वक | | | | |

*श्रीभगवानुवाच*

**त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।**
**सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥ २॥**

*श्रीभगवान् बोले—*

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **देहिनाम्** | =मनुष्योंकी | **च** | =तथा | **एव** | =ही |
| **सा** | =वह | **राजसी** | =राजसी | **भवति** | =होती है, |
| **स्वभावजा** | =स्वभावसे उत्पन्न हुई | **च** | =और | **ताम्** | =उसको (तुम मुझसे) |
| | | **तामसी** | =तामसी | | |
| **श्रद्धा** | =श्रद्धा | **इति** | =—ऐसे | | |
| **सात्त्विकी** | =सात्त्विकी | **त्रिविधा** | =तीन तरहकी | **शृणु** | =सुनो। |

**सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।**
**श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥ ३॥**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **भारत** | =हे भारत! | **भवति** | =होती है। | **यच्छ्रद्धः** | =जैसी श्रद्धावाला है, |
| **सर्वस्य** | =सभी मनुष्योंकी | **अयम्** | =यह | **सः, एव** | =वही |
| **श्रद्धा** | =श्रद्धा | **पुरुषः** | =मनुष्य | **सः** | =उसका स्वरूप है अर्थात् वही उसकी निष्ठा (स्थिति) है। |
| **सत्त्वानुरूपा** | =अन्तःकरणके अनुरूप | **श्रद्धामयः** | =श्रद्धामय है। | | |
| | | **यः** | =(इसलिये) जो | | |

**विशेष भाव**—श्रद्धा भाव है। जैसा जिसका भाव होता है, वैसा ही उसका स्वरूप होता है। भाव दो तरहका होता है—सद्भाव और असद्भाव। जो परमात्माकी तरफ ले जाता है, वह सद्भाव होता है और जो संसारकी तरफ ले जाता है, वह असद्भाव होता है। दैवी सम्पत्तिमें सद्भावकी मुख्यता होती है और आसुरी सम्पत्तिमें असद्भावकी मुख्यता होती है।

'मैं साधक हूँ'—इसमें अगर असद्भावकी मुख्यता हो तो अभिमान होता है और सद्भावकी मुख्यता हो तो स्वाभिमान होता है। अभिमानसे आसुरी सम्पत्ति आती है और स्वाभिमानसे दैवी सम्पत्ति आती है। दूसरोंकी अपेक्षा अपनेमें विशेषता देखनेसे अभिमान होता है और अपने कर्तव्यको देखनेसे स्वाभिमान होता है कि मैं साधन-विरुद्ध काम कैसे कर सकता हूँ! अभिमान होनेपर तो मनुष्य साधन-विरुद्ध काम कर बैठेगा, पर स्वाभिमान होनेपर उसको साधन-विरुद्ध काम करनेमें लज्जा होगी। स्वाभिमान होनेसे वह सात्त्विकीमें चला जायगा और अभिमान होनेसे वह राजसी-तामसीमें चला जायगा।

~~~

**यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।**
**प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥ ४॥**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **सात्त्विकाः** | =सात्त्विक मनुष्य | **यक्षरक्षांसि** | =यक्षों तथा राक्षसोंका | **जनाः** | =मनुष्य हैं, (वे) |
| **देवान्** | =देवताओंका | **च** | =और | **प्रेतान्** | =प्रेतों (और) |
| **यजन्ते** | =पूजन करते हैं, | **अन्ये** | =दूसरे (जो) | **भूतगणान्** | =भूतगणोंका |
| **राजसाः** | =राजस मनुष्य | **तामसाः** | =तामस | **यजन्ते** | =पूजन करते हैं। |

**विशेष भाव**—देवताओंका पूजन करनेवाले सात्त्विक मनुष्य शरीर छूटनेपर देवताओंको प्राप्त होते हैं, यक्ष-राक्षसोंका पूजन करनेवाले राजस मनुष्य यक्ष-राक्षसोंको प्राप्त होते हैं और भूत-प्रेतोंका पूजन करनेवाले तामस मनुष्य भूत-प्रेतोंको प्राप्त होते हैं*।

गीतामें 'यज्ञ' शब्द बहुत व्यापक है, जिसके अन्तर्गत यज्ञ, दान, तप, व्रत आदि सम्पूर्ण कर्तव्य कर्म आ जाते हैं' (गीता ४। २४—३०)। अतः यहाँ भी '**यजन्ते**' पदके अन्तर्गत सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंको लेना चाहिये, जिनमें यज्ञ मुख्य है।

'**प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये**'—हमारे जो पितर हैं, वे दूसरोंके लिये भूत हैं और दूसरेके जो पितर हैं, वे हमारे लिये भूत हैं। पितरोंका पूजन करना तामस नहीं है, पर भूतोंका पूजन करना तामस है।

~~~

**अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।**
**दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः॥ ५॥**
**कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।**
**मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥ ६॥**

---

* **यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।**
**भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥** (गीता ९। २५)

'सकामभावसे देवताओंका पूजन करनेवाले शरीर छोड़नेपर देवताओंको प्राप्त होते हैं। पितरोंका पूजन करनेवाले पितरोंको प्राप्त होते हैं। भूत-प्रेतोंका पूजन करनेवाले भूत-प्रेतोंको प्राप्त होते हैं। परन्तु मेरा पूजन करनेवाले मुझे ही प्राप्त होते हैं।'

**ये** = जो
**जनाः** = मनुष्य
**अशास्त्रविहितम्** = शास्त्रविधिसे रहित
**घोरम्** = घोर
**तपः** = तप
**तप्यन्ते** = करते हैं;
**दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः** = (जो) दम्भ और अहंकारसे अच्छी तरह युक्त हैं;
**कामरागबलान्विताः** = (जो) भोग-पदार्थ, आसक्ति और हठसे युक्त हैं;
**शरीरस्थम्** = (जो) शरीरमें स्थित
**भूतग्रामम्** = पाँच भूतोंको अर्थात् पाञ्चभौतिक शरीरको
**च** = तथा
**अन्तःशरीरस्थम्** = अन्तःकरणमें स्थित
**माम्** = मुझ परमात्माको
**एव** = भी
**कर्शयन्तः** = कृश करनेवाले हैं,
**तान्** = उन
**अचेतसः** = अज्ञानियोंको (तू)
**आसुरनिश्चयान्** = आसुर निष्ठावाले (आसुरी सम्पत्तिवाले)
**विद्धि** = समझ।

~~~

**आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।**
**यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु॥ ७॥**

**आहारः** = आहार
**अपि** = भी
**सर्वस्य** = सबको
**त्रिविधः** = तीन प्रकारका
**प्रियः** = प्रिय
**भवति** = होता है
**तु** = और
**तथा** = वैसे ही
**यज्ञः** = यज्ञ,
**तपः** = तप (और)
**दानम्** = दान (भी तीन प्रकारके होते हैं अर्थात् शास्त्रीय कर्मोंमें भी गुणोंको लेकर तीन प्रकारकी रुचि होती है,)
**तेषाम्** = (तू) उनके
**इमम्** = इस
**भेदम्** = भेदको
**शृणु** = सुन।

**विशेष भाव**—मनुष्यके द्वारा स्वभावसे होनेवाली क्रियाएँ दो प्रकारकी होती हैं—व्यावहारिक और शास्त्रीय। अतः यहाँ 'आहार' के अन्तर्गत व्यावहारिक (खान-पान, रहन-सहन आदि) और 'यज्ञ-तप-दान' के अन्तर्गत शास्त्रीय क्रियाओंको समझना चाहिये।

~~~

**आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।**
**रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥ ८॥**

**आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः** = आयु, सत्त्व-गुण, बल, आरोग्य, सुख और प्रसन्नता बढ़ानेवाले,
**स्थिराः** = स्थिर रहनेवाले,
**हृद्याः** = हृदयको शक्ति देनेवाले,
**रस्याः** = रसयुक्त (तथा)
**स्निग्धाः** = चिकने—
**आहाराः** = (ऐसे) आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ
**सात्त्विकप्रियाः** = सात्त्विक मनुष्यको प्रिय होते हैं।

~~~

**कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।**
**आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥ ९॥**

**कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः** = अति कड़वे, अति खट्टे, अति नमकीन, अति गरम, अति तीखे, अति रूखे और अति दाहकारक
~~~

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **आहाराः** | =आहार अर्थात् भोजनके पदार्थ | **राजसस्य** | =राजस मनुष्यको | **दुःखशोकामयप्रदाः** | = दुःख, शोक और रोगोंको देनेवाले हैं। |
| | | **इष्टाः** | =प्रिय होते हैं, (जो कि) | | |

**यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।**
**उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥ १०॥**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **यत्** | =जो | **पर्युषितम्** | = बासी | **अमेध्यम्** | =महान् अपवित्र (मांस आदि) |
| **भोजनम्** | =भोजन | **च** | =और | | |
| **यातयामम्** | =सड़ा हुआ, | **उच्छिष्टम्** | =जूठा है | **अपि** | =भी है, (वह) |
| **गतरसम्** | =रसरहित, | **च** | =तथा (जो) | **तामसप्रियम्** | =तामस मनुष्यको प्रिय होता है। |
| **पूति** | =दुर्गन्धित, | | | | |

**अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।**
**यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः॥ ११॥**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **यष्टव्यम्, एव** | =यज्ञ करना ही कर्तव्य है | | करके | **यज्ञः** | =यज्ञ |
| **इति** | =—इस तरह | **अफलाकाङ्क्षिभिः** | =फलेच्छारहित मनुष्योंद्वारा | **इज्यते** | =किया जाता है, |
| **मनः** | =मनको | **यः** | =जो | **सः** | =वह |
| **समाधाय** | =समाधान (सन्तुष्ट) | **विधिदृष्टः** | =शास्त्रविधिसे नियत | **सात्त्विकः** | =सात्त्विक है। |

**अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।**
**इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्॥ १२॥**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **तु** | =परन्तु | **एव** | =ही | **अपि** | =भी (किया जाता है), |
| **भरतश्रेष्ठ** | =हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन! | **इज्यते** | =किया जाता है | **तम्** | =उस |
| **यत्** | =जो | **च** | =अथवा | **यज्ञम्** | =यज्ञको (तुम) |
| **फलम्** | =फलकी | **दम्भार्थम्** | =दम्भ (दिखावटीपन) के लिये | **राजसम्** | =राजस |
| **अभिसन्धाय** | =इच्छाको लेकर | | | **विद्धि** | =समझो। |

**विशेष भाव**—इस श्लोकमें आये '**यत्**' पदसे यह भाव निकलता है कि फलेच्छा और दम्भके लिये जो भी यज्ञ, दान, तप आदि कर्म किये जायँ, वे सब राजस समझने चाहिये।

**विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।**
**श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते॥ १३॥**

**विधिहीनम्** = शास्त्रविधिसे हीन,
**असृष्टान्नम्** = अन्न-दानसे रहित,
**मन्त्रहीनम्** = बिना मन्त्रोंके,
**अदक्षिणम्** = बिना दक्षिणाके (और)
**श्रद्धाविरहितम्** = बिना श्रद्धाके किये जानेवाले
**यज्ञम्** = यज्ञको
**तामसम्** = तामस
**परिचक्षते** = कहते हैं।

~~~

**देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।**
**ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥ १४॥**

**देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्** = देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और जीवन्मुक्त महापुरुषका यथायोग्य पूजन करना,
**शौचम्** = शुद्धि रखना,
**आर्जवम्** = सरलता,
**ब्रह्मचर्यम्** = ब्रह्मचर्यका पालन करना
**च** = और
**अहिंसा** = हिंसा न करना— (यह)
**शारीरम्** = शरीर-सम्बन्धी
**तपः** = तप
**उच्यते** = कहा जाता है।

**विशेष भाव—**शारीरिक तपमें त्याग मुख्य है; जैसे-पूजन करनेमें अपनेमें बड़प्पनके भावका त्याग है; शुद्धि रखनेमें आलस्य-प्रमादका त्याग है; सरलता रखनेमें अभिमानका त्याग है; ब्रह्मचर्यमें विषयसुखका त्याग है; अहिंसामें अपने सुखके भावका त्याग है। इस प्रकार त्याग करनेसे शारीरिक तप होता है।

~~~

**अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।**
**स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥ १५॥**

**यत्** = जो
**अनुद्वेगकरम्** = किसीको भी उद्विग्न न करनेवाला,
**सत्यम्** = सत्य
**च** = और
**प्रियहितम्** = प्रिय तथा हितकारक
**वाक्यम्** = भाषण है, (वह)
**च** = तथा
**स्वाध्यायाभ्यसनम्** = स्वाध्याय और अभ्यास (नामजप आदि)
**एव** = भी
**वाङ्मयम्** = वाणी-सम्बन्धी
**तपः** = तप
**उच्यते** = कहा जाता है।

~~~

**मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।**
**भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥ १६॥**

**मनःप्रसादः** = मनकी प्रसन्नता,
**सौम्यत्वम्** = सौम्य भाव,
**मौनम्** = मननशीलता,
**आत्मविनिग्रहः** = मनका निग्रह (और)
**भावसंशुद्धिः** = भावोंकी भलीभाँति शुद्धि
**इति** = —इस तरह
**एतत्** = यह
**मानसम्** = मन-सम्बन्धी
**तपः** = तप
**उच्यते** = कहा जाता है।

**विशेष भाव—**प्रतिकूल परिस्थितिमें भी प्रसन्न रहे। अपने ऊपर परिस्थितिका असर न पड़े। दूसरेकी प्रतिकूल बात सुनकर भी सौम्य रहे। मनकी स्वतन्त्रताका त्याग करके मनन करे; क्योंकि मनको स्वतन्त्र छोड़नेसे सुखभोग होता है, मननशीलता नहीं आती। मनकी मूढ़, क्षिप्त और विक्षिप्त वृत्तियोंका त्याग करे। अपने मनमें किसीके अहितका भाव न हो। यह सब मन-सम्बन्धी तप है।

~~~

**श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।**
**अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते॥ १७॥**

| | |
|---|---|
| **परया** | = परम |
| **श्रद्धया** | = श्रद्धासे |
| **युक्तैः** | = युक्त |
| **अफलाकाङ्क्षिभिः** | = फलेच्छारहित |
| **नरैः** | = मनुष्योंके द्वारा (जो) |
| **त्रिविधम्** | = तीन प्रकार (शरीर, वाणी और मन)का |
| **तपः** | = तप |
| **तप्तम्** | = किया जाता है, |
| **तत्** | = उसको |
| **सात्त्विकम्** | = सात्त्विक |
| **परिचक्षते** | = कहते हैं। |

**सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।**
**क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्॥ १८॥**

| | |
|---|---|
| **यत्** | = जो |
| **तपः** | = तप |
| **सत्कारमानपूजार्थम्** | = सत्कार, मान और पूजाके लिये |
| **च** | = तथा |
| **दम्भेन** | = दिखानेके भावसे |
| **एव** | = भी |
| **क्रियते** | = किया जाता है, |
| **तत्** | = वह |
| **इह** | = इस लोकमें |
| **चलम्** | = अनिश्चित (और) |
| **अध्रुवम्** | = नाशवान् फल देनेवाला (तप) |
| **राजसम्** | = राजस |
| **प्रोक्तम्** | = कहा गया है। |

**मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।**
**परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्॥ १९॥**

| | |
|---|---|
| **यत्** | = जो |
| **तपः** | = तप |
| **मूढग्राहेण** | = मूढ़तापूर्वक हठसे |
| **आत्मनः** | = अपनेको |
| **पीडया** | = पीड़ा देकर |
| **वा** | = अथवा |
| **परस्य** | = दूसरोंको |
| **उत्सादनार्थम्** | = कष्ट देनेके लिये |
| **क्रियते** | = किया जाता है, |
| **तत्** | = वह (तप) |
| **तामसम्** | = तामस |
| **उदाहृतम्** | = कहा गया है। |

**विशेष भाव—'मूढग्राहेण'** में तो शुद्ध तमोगुण है, पर **'परस्योत्सादनार्थम्'** में रजोगुण मिला हुआ है। मूढ़ता तमोगुण है और स्वार्थभाव, क्रोध आदि राजस हैं। क्रोध रजोगुणसे पैदा होकर तमोगुणमें चला जाता है—**'क्रोधाद्भवति सम्मोहः'** (गीता २। ६३)।

**दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।**
**देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥ २०॥**

| | |
|---|---|
| **दातव्यम्** | = दान देना कर्तव्य है— |
| **इति** | = ऐसे भावसे |
| **यत्** | = जो |
| **दानम्** | = दान |
| **देशे** | = देश |
| **च** | = तथा |
| **काले** | = काल |
| **च** | = और |
| **पात्रे** | = पात्रके प्राप्त होनेपर |
| **अनुपकारिणे** | = अनुपकारीको अर्थात् निष्कामभावसे |
| **दीयते** | = दिया जाता है, |
| **तत्** | = वह |
| **दानम्** | = दान |
| **सात्त्विकम्** | = सात्त्विक |
| **स्मृतम्** | = कहा गया है। |

**विशेष भाव—**यह सात्त्विक दान वास्तवमें त्याग है। यह वह दान नहीं है, जिसके लिये कहा गया है—'एक गुना दान, सहस्रगुना पुण्य'; क्योंकि उस दानसे (सहस्रके साथ) सम्बन्ध जुड़ता है*। परन्तु त्यागसे सम्बन्ध-विच्छेद होता है। दानके बदलेमें कुछ पानेकी कामना करनेसे वह राजस हो जाता है—'**यत्तु प्रत्युपकारार्थम्**' (गीता १७। २१)। इस राजसभावका निषेध करनेके लिये यहाँ '**अनुपकारिणे**' पद आया है।

गीतामें वर्णित सात्त्विक गुण त्यागकी तरफ जाता है, इसलिये इसको भगवान्‌ने 'अनामय' कहा है (१४। ६)। सत्त्वगुण सम्बन्ध-विच्छेद (त्याग) करता है, रजोगुण सम्बन्ध जोड़ता है और तमोगुण मूढ़ता लाता है।

गीताके अनुसार दूसरेके हितके लिये कर्म करना 'यज्ञ' है, हरदम प्रसन्न रहना 'तप' है और उसकी चीज उसीको दे देना 'दान' है। स्वार्थबुद्धिपूर्वक अपने लिये यज्ञ-तप-दान करना आसुरी अथवा राक्षसी स्वभाव है।

~~~

**यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।**
**दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्॥ २१॥**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **तु** | = किन्तु | **वा** | = अथवा | **तत्** | = वह |
| **यत्** | = जो (दान) | **फलम्** | = फल-प्राप्तिका | **दानम्** | = दान |
| **परिक्लिष्टम्** | = क्लेशपूर्वक | **उद्दिश्य** | = उद्देश्य बनाकर | **राजसम्** | = राजस |
| **च** | = और | **पुनः** | = फिर | **स्मृतम्** | = कहा जाता है। |
| **प्रत्युपकारार्थम्** | = प्रत्युपकारके लिये | **दीयते** | = दिया जाता है, | | |

~~~

**अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।**
**असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥ २२॥**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **यत्** | = जो | **अवज्ञातम्** | = अवज्ञापूर्वक | **दीयते** | = दिया जाता है, |
| **दानम्** | = दान | **अदेशकाले** | = अयोग्य देश और कालमें | **तत्** | = वह (दान) |
| **असत्कृतम्** | = बिना सत्कारके | | | **तामसम्** | = तामस |
| **च** | = तथा | **अपात्रेभ्यः** | = कुपात्रको | **उदाहृतम्** | = कहा गया है। |

**विशेष भाव—**शास्त्रमें आया है कि कलियुगमें दान ही एकमात्र धर्म है; अतः जिस-किसी प्रकारसे भी दान दिया जाय, वह कल्याण ही करता है। इसका तात्पर्य है कि कलियुगमें यज्ञ, दान, तप, व्रत आदि शुभकर्म विधिपूर्वक करने कठिन हैं; अतः किसी तरहसे देनेकी, त्याग करनेकी आदत पड़ जाय। इसलिये जिस-किसी प्रकारसे भी दान देते रहना चाहिये।

~~~

**ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।**
**ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥ २३॥**

---

\* सुपात्रदानाच्च भवेद्धनाढ्यो धनप्रभावेण करोति पुण्यम्।
पुण्यप्रभावात्सुरलोकवासी पुनर्धनाढ्यः पुनरेव भोगी॥
कुपात्रदानाच्च भवेद्दरिद्रो दारिद्र्य दोषेण करोति पापम्।
पापप्रभावान्नरकं प्रयाति पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी॥
~~~

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **ॐ** | = ॐ, | **निर्देशः** | = निर्देश (संकेत) | **च** | = तथा |
| **तत्** | = तत्, | | | **ब्राह्मणाः** | = ब्राह्मणों |
| **सत्** | = सत्— | **स्मृतः** | = किया गया है, | **च** | = और |
| **इति** | = इन | **तेन** | = उसी परमात्मासे | **यज्ञाः** | = यज्ञोंकी |
| **त्रिविधः** | = तीन प्रकारके नामोंसे | **पुरा** | = सृष्टिके आदिमें | | |
| **ब्रह्मणः** | = (जिस) परमात्माका | **वेदाः** | = वेदों | **विहिताः** | = रचना हुई है। |

**विशेष भाव**—'महानिर्वाणतन्त्र' में आया है—

**ॐ तत्सदिति मन्त्रेण यो यत्कर्म समाचरेत्।**
**गृहस्थो वाप्युदासीनस्तस्याभीष्टाय तद् भवेत्॥**
**जपो होमः प्रतिष्ठा च संस्काराद्यखिलाः क्रियाः।**
**ॐ तत्सन्मन्त्रनिष्पन्नाः सम्पूर्णाः स्युर्न संशयः॥**

(१४। १५४-१५५)

'**ॐ तत् सत्**'—इस मन्त्रसे गृहस्थ अथवा उदासीन (साधु) जो भी कर्म आरम्भ करता है, उसको इससे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। जप, होम, प्रतिष्ठा, संस्कार आदि सम्पूर्ण क्रियाएँ 'ॐ तत् सत्'—इस मन्त्रसे सफल हो जाती हैं, इसमें सन्देह नहीं है।'

**तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।**
**प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥ २४॥**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **तस्मात्** | = इसलिये | **यज्ञदानतपःक्रियाः** | = यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ | **इति** | = इस परमात्माके नामका |
| **ब्रह्मवादिनाम्** | = वैदिक सिद्धान्तोंको माननेवाले पुरुषोंकी | **सततम्** | = सदा | **उदाहृत्य** | = उच्चारण करके (ही) |
| **विधानोक्ताः** | = शास्त्रविधिसे नियत | **ओम्** | = 'ॐ' | **प्रवर्तन्ते** | = आरम्भ होती हैं। |

**तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।**
**दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः॥ २५॥**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **तत्** | = 'तत्' नामसे कहे जानेवाले परमात्माके लिये ही सब कुछ है— | **मोक्षकाङ्क्षिभिः** | = मुक्ति चाहनेवाले मनुष्योंद्वारा | **यज्ञतपःक्रियाः** | = यज्ञ और तपरूप क्रियाएँ |
| | | **फलम्** | = फलकी | **च** | = तथा |
| | | **अनभिसन्धाय** | = इच्छासे रहित होकर | **दानक्रियाः** | = दानरूप क्रियाएँ |
| **इति** | = ऐसा मानकर | **विविधाः** | = अनेक प्रकारकी | **क्रियन्ते** | = की जाती हैं। |

**विशेष भाव**—परमात्माके लिये परोक्षवाचक '**तत्**' (वह) पदके प्रयोगका तात्पर्य है कि परमात्मा अलौकिक हैं—'**उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः**' (गीता १५। १७)। वे विचारके विषय नहीं हैं, प्रत्युत श्रद्धा-विश्वासके विषय हैं।

**सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।**
**प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥ २६॥**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **पार्थ** | =हे पार्थ! | **च** | =और | **प्रशस्ते** | =प्रशंसनीय |
| **सत्** | ='सत्'— | **साधुभावे** | =श्रेष्ठ भावमें | **कर्मणि** | =कर्मके साथ |
| **इति** | =ऐसा | **प्रयुज्यते** | =प्रयोग किया जाता है | **सत्** | ='सत्' |
| **एतत्** | =यह परमात्माका नाम | | | **शब्दः** | =शब्द |
| **सद्भावे** | =सत्तामात्रमें | **तथा** | =तथा | **युज्यते** | =जोड़ा जाता है। |

**विशेष भाव—**परमात्माके अस्तित्व या होनेपनको '**सद्भाव**' कहते हैं, जिसका कभी अभाव नहीं होता—'**नाभावो विद्यते सतः**' (गीता २। १६)। प्रायः सभी आस्तिक यह भाव तो मानते ही हैं कि सर्वोपरि सर्वनियन्ता कोई विलक्षण शक्ति सदासे है और वह अपरिवर्तनशील है। जो संसार प्रत्यक्ष प्रतिक्षण बदलता है तथा जिसका अभाव होता है, उसको 'है' अथवा स्थिर कैसे कहा जाय? कारण कि इन्द्रियों, बुद्धि आदिसे जिसको देखते, जानते हैं, वह संसार पहले नहीं था, आगे भी नहीं रहेगा और वर्तमानमें भी जा रहा है—यह सभीका अनुभव है। जिनसे संसारको देखते, जानते हैं, वे इन्द्रियाँ, बुद्धि आदि भी संसारके ही हैं। फिर भी आश्चर्य यह है कि 'नहीं' होते हुए भी संसार 'है' के रूपमें स्थिर दिखायी दे रहा है! अगर संसार वास्तवमें होता तो बदलता नहीं और बदलता है तो 'है' नहीं। अतः यह 'होनापन' संसार-शरीरादिका नहीं है, प्रत्युत सत्-तत्त्व (परमात्मा) का है, जिससे नहीं होते हुए भी संसार 'है' दीखता है।

अन्तःकरणके श्रेष्ठ भावोंको 'साधुभाव' कहते हैं। परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले होनेसे श्रेष्ठ भावोंके लिये 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है। श्रेष्ठ भाव अर्थात् सद्गुण-सदाचार दैवी सम्पत्ति है। दैवी सम्पत्ति 'सत्' है और आसुरी सम्पत्ति 'असत्' है। मुक्ति देनेवाले सब साधन 'सत्' हैं और बन्धनकारक सब कर्म 'असत्' हैं। दुर्गुण-दुराचार 'असत्' हैं, पर उनका त्याग 'सत्' है। असत्का त्याग भी 'सत्' है और सत्का ग्रहण भी 'सत्' है। वास्तवमें असत्के त्यागकी जितनी जरूरत है, उतनी 'सत्' को ग्रहण करनेकी जरूरत नहीं है। 'असत्' का त्याग किये बिना लाया गया 'सत्' ऊपरसे चिपकाया जाता है, जो ठहरता नहीं। परन्तु असत्का त्याग करनेसे 'सत्' भीतरसे उदय होता है। अतः जिसको हम असत्-रूपसे जानते हैं, उसका त्याग करनेसे 'सत्' का अनुभव हो जाता है।

यज्ञ, तप, दान, तीर्थ, व्रत, पूजा-पाठ, विवाह आदि जितने भी शास्त्रविहित शुभकर्म हैं, वे स्वयं ही प्रशंसनीय होनेसे सत्कर्म हैं। परन्तु इन प्रशंसनीय कर्मोंका सम्बन्ध अगर भगवान्के साथ न हो तो ये 'सत्' न कहलाकर केवल शास्त्रविहित कर्ममात्र रह जाते हैं। यद्यपि दैत्य-दानव भी तपस्या आदि प्रशंसनीय कर्म करते हैं, तथापि असद्भाव अर्थात् अपने स्वार्थ और दूसरेके अहितका भाव होनेसे वे बाँधनेवाले असत्-कर्म हो जाते हैं (गीता १७। १९)। उनसे अगर ब्रह्मलोककी प्राप्ति भी हो जाय तो वहाँसे लौटकर आना पड़ता है—'**आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन**' (गीता ८। १६)। भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म करनेवाले मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होते—'**न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति**' (गीता ६। ४०); क्योंकि उसका फल 'सत्' होता है। जो कर्म स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके प्राणिमात्रके हितके भावसे किये जाते हैं, वही वास्तवमें प्रशंसनीय सत्कर्म होते हैं।

## यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
## कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥ २७॥

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **यज्ञे** | =यज्ञ | **दाने** | =दानरूप क्रियामें (जो) | **सत्** | ='सत्'— |
| **च** | =तथा | | | **इति** | =ऐसे |
| **तपसि** | =तप | **स्थितिः** | =स्थिति (निष्ठा) है, | **उच्यते** | =कही जाती है |
| **च** | =और | **एव** | =(वह) भी | **च** | =और |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **तदर्थीयम्** | =उस परमात्माके निमित्त किया जानेवाला | **कर्म** | =कर्म | **इति** | =ऐसा |
| | | **एव** | =भी | **अभिधीयते** | =कहा जाता है। |
| | | **सत्** | =‘सत्’— | | |

**विशेष भाव—**पचीसवें श्लोकमें निष्कामभावसे कर्म करनेकी बात आयी थी—**‘अनभिसन्धाय फलम्’।** अब यहाँ भगवान्‌के लिये कर्म करनेकी बात आयी है। मुक्ति चाहनेवाले निष्कामभावसे कर्म करते हैं—**‘मोक्षकाङ्क्षिभिः’** (गीता १७। २५) और भक्ति चाहनेवाले भगवान्‌के लिये कर्म करते हैं (गीता ९। २६—२८)

भगवान्‌का सम्बन्ध होनेसे भी कर्म ‘सत्’ अर्थात् सत्-फल देनेवाला हो जाता है और असत्‌के सम्बन्धका त्याग होनेसे भी कर्म ‘सत्’ हो जाता है।

~~~

**अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।**
**असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥ २८॥**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **पार्थ** | =हे पार्थ! | **यत्** | =(और भी) जो कुछ | **नो** | =न तो |
| **अश्रद्धया** | =अश्रद्धासे | | | **इह** | =यहाँ होता है |
| **हुतम्** | =किया हुआ हवन, | **कृतम्** | =किया जाय, (वह सब) | **च** | =और |
| **दत्तम्** | =दिया हुआ दान (और) | | | **न** | =न |
| | | **असत्** | =‘असत्’— | **प्रेत्य** | =मरनेके बाद ही होता है अर्थात् उसका कहीं भी सत् फल नहीं होता। |
| **तप्तम्** | =तपा हुआ | **इति** | =ऐसा | | |
| **तपः** | =तप | **उच्यते** | =कहा जाता है। | | |
| **च** | =तथा | **तत्** | =उसका (फल) | | |

**विशेष भाव—‘कृतं च यत्’** पदोंमें नामजप, कीर्तन आदि नहीं आयेंगे; क्योंकि उनमें भगवान्‌का सम्बन्ध होनेसे वे ‘कर्म’ नहीं हैं, प्रत्युत ‘उपासना’ है।

~~~

*ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे*
*श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥*

~~~
~~~